वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

JUNE-2024

# स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

# पूज्य श्री सौभाग्यभाईके समाधि दिन (ज्येष्ठ वदि १०) पर उनके चरणोंमें कोटीकोटी वंदन

शिष्य गुरुका उपकार व्यक्त करे और तदर्थ बंधन नमस्कार आदि भावों से विभोर हो जाय वह प्रसिद्ध है। किंतु पूज्य श्री सौभाग्यभाईकी पात्रता कैसी आश्चर्यकारक समझनी कि गुरु स्थान पर बिराजमान ऐसे कृपालुदेवने उनका उपकार गाकर वंदन और चरण स्पर्श आदि भावोंको व्यक्त किया है !!!!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३१८, वर्ष-२६, जून-२०२४

श्रावण शुक्ल ९, मंगलवार, दि. २६-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-१०४ से १०५ प्रवचन-४४

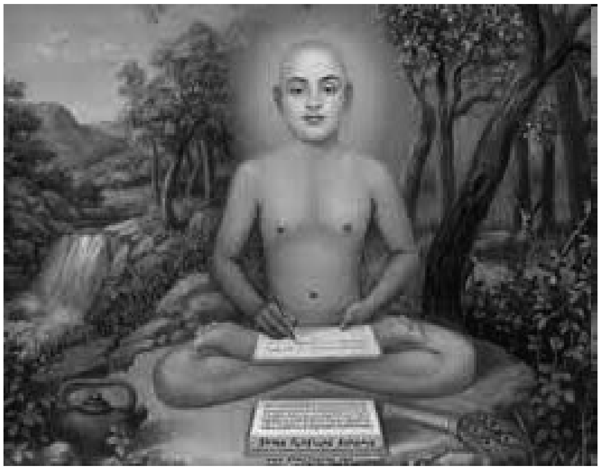

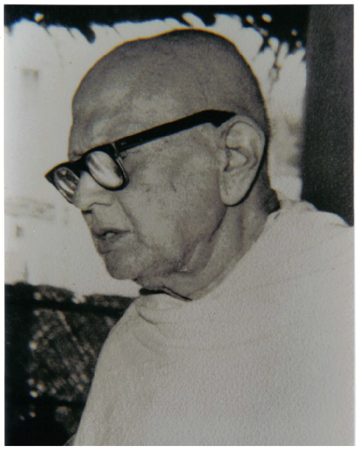

संसार की पर्यायों का काल अशुद्ध या साधक, उनका काल बहुत थोड़ा है। अशुद्ध का अनन्त, साधक का असंख्य और साध्य-पूर्ण दशा का अनन्त... अनन्त... अनन्त... द्रव्य का अन्त कब आयेगा? द्रव्य का अन्त नहीं तो पर्याय का अन्त कब (आयेगा)? ऐसे की ऐसी पर्याय... पर्याय... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य ऐसे अनन्त सिद्ध एक समय की दशावाला सिद्धपद, ऐसी अनन्त सिद्धपद (की पर्याय) एक समय में आत्मा में पड़ी है। आहा...हा...! समझ में आया?

स्थूलदृष्टि से महाभगवान हाथ में नहीं आता, तब तक उसकी रमणता कहाँ करनी? इसका पता नहीं पड़ता। समझ में आया? महा दृष्टि से अर्थात्? सम्यग्दृष्टि महान दृष्टि है, महान दृष्टि है। उस दृष्टि के द्वारा परमात्मा ऐसा है – ऐसी उसके अन्तर में प्रतीति, श्रद्धा, अनुभूति में भान होकर आने के बाद उसमें लीनता करना है। तब मेरी मुक्ति होगी। समझ में आया?

८० वीं गाथा में कहा न? **'जो जाणदि अरहंतं'**, फिर अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है कि सम्यग्दर्शन (हुआ) परन्तु यह प्रमाद चोर है, हाँ! यह मेरा माल न लूट ले (जाए) इसमें ऐसा लिखा है। वह प्रमाद चोर है, हाँ! यह कहते हैं कि मुझे भान हुआ भले परन्तु यह प्रमाद मेरा लूट न ले जाये, इसलिए मैं सावधान होकर स्वरूप की सावधानी करता हूँ। प्रमाद मिटाकर पुरुषार्थ की कमर बाँधकर बैठा हूँ। आहा...हा...! समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, धर्मात्मा जीव ने धर्मी आत्मा ऐसा भगवान, उसका उसे ध्यान -धर्मध्यान करना, लो! उसका नाम धर्मध्यान है। छोटाभाई! यह सब सूक्ष्म है, हाँ! वहाँ सब कहीं (नहीं है)। महा कठिनता से सुनने को

मिला। आहा...हा...! परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ वीतराग की वाणी आयी, उसमें यह तत्त्व आया है। भाई! 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' केवली पण्णत्तो धम्मो उत्तमं' मांगलिक तीन बोल आते हैं - चत्तारि मंगल, चत्तारि उत्तम, चत्तारि शरणं। यह सब भगवान! यह शरण तेरी आत्मा में पड़ा है - ऐसा कहते हैं। भाई! आत्मा तेरा शरण है। उस समय कहाँ ऐसे झपट्टे मारता है? रोग आवे और वहाँ कहाँ नजर डाली? भगवान को सम्हाल (स्मरणकर)! यह तो विकल्प है। समझ में आया? वहाँ कहीं शरण नहीं होती। भगवान भगवान भगवान भगवान भगवान भगवान भगवान किया होगा तो वह अन्तर्जल्प का राग है। तेरा भगवान अन्दर रागरहित है, उसकी शरण ले तब इसमें वास्तविक अरहन्त और सिद्ध की शरण ली - ऐसा कहा जाता है। १०४ (गाथा पूरी) हुई। १०५!

**आत्मा ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश है**

**सो सिउ संकरू-विण्हु सो सो रूद्द वि सो बुद्धु।**
**सो जिणु ईसरू बंभु सो सो अणंतु सो सिद्धु**
**।। १०५।।**

**वह शिव शंकर विष्णु अरु रुद्र वही है बुद्ध।**
**ब्रह्मा ईश्वर जिन यही, सिद्ध अनन्त अरु शुद्ध।।**

**अन्वयार्थ - (सो सिउ संकरू विण्हु सो) वही शिव है, शंकर है, वही विष्णु है (सो रुद्द वि सो बुद्धु) वही रुद्र है, वही बुद्ध है (सो जिणु ईसरू बंभु सो) वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है (सो अणंतु सो सिद्धु) वही अनन्त है, वही सिद्ध है।**

---

**'आत्मा ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश है।'** अन्यमती कहते हैं, वे नहीं, हाँ! अर्थ अलग। यह तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश... ऐसा आत्मा उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहते हैं। यह लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहते हैं, वह आत्मा ऐसा नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! बहुत अन्तर है, वस्तु में तो पूरा (अन्तर है)। कल देखा था, नहीं? समयसार में प्रस्तावना में मनोहरलालजी वर्णी ने बहुत लिखा कि सबमें विरोध नहीं है। परमात्मा मानते हों, अमुक मानते हों, हैं न? उनकी प्रस्तावना है। सब विवेकी है, प्रज्ञापूर्ण है और एक-दूसरे से कोई विरुद्ध नहीं है, उसमें कोई असत्य नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ने देखा आत्मा ऐसा कभी तीन काल में दूसरी जगह नहीं है। आत्मा की बातें भले कोई भी करे। समझ में आया? कहाँ गयी पुस्तक? उसमें आया है। सबका ध्येय समयसार है, उसका अर्थ क्या? समयसार अर्थात् आत्मा है ही कहाँ ऐसा? **शशीभाई!** कैसे होगा? यह वैष्णव थे, लो न!

आत्मा एक, उसमें आकाश के प्रदेशों की संख्या से अनन्त-अनन्त गुण, उनकी अनन्त पर्यायें, उनके असंख्य प्रदेश... कहाँ है? लाओ, किसी जगह ऐसा आत्मा हो तो। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवाय.... भले आत्मा ध्येय... ध्येय करे, बातें करे परन्तु आत्मा कैसा है? - यह जाने बिना ध्येय कहाँ से आया उसे? समझ में आया?

लिखा है देखो? 'कुछ विवेकी महानुभावों की धारणा है कि जिस परमब्रह्म परमेश्वर ने अपनी सृष्टि की है, उस परम पिता परमात्मा की ही उपासना से दु:खो की मुक्ति हो सकती है। कुछ विवेकी महानुभाव की धारणा है...' यहाँ ब्रह्मा विष्णु नाम पड़े हैं, इसलिए ऐसा नहीं समझना चाहिए कि दूसरे लोग कहते हैं, वे ब्रह्मा-विष्णु। 'कोई विवेकी कहते हैं कि प्रकृति और पुरुष में एकत्व का अभ्यास होने से क्लेश एवं जन्म परम्परा हुई है तो प्रकृति और पुरुष का भेदज्ञान कर लेने से क्लेश मिट जाय। कुछ विवेकी महानुभाव के धारणा एक क्षणिक चित्तवृत्ति है।' उसका भी आत्मा ध्यान करता है। 'कुछ विवेकी महानुभाव की धारणा है कि आत्मा तो शाश्वत् निर्विकार है। विकार का जब तक भ्रम है, तब तक जीव दु:खी है। ....विकार का भ्रम समाप्त शांत...। कुछ विवेकी महानुभावों की धारणा है कि दुष्कर्मों से जीव संसारिक यातनाएँ सहते हैं। यातनाओं का मुक्ति पाना सत् कर्म(है)। और कुछ विवेकी महानुभावों की धारणा है कि विकल्पात्मक वेद उपायों को ही जीव का संसार परिभ्रमण कर रहा है। इस भवभ्रमण की निवृत्ति निर्विकल्प समाधि से होती है।

इत्यादि प्रज्ञापूर्वक अनेक धारणा हैं। इनमें से किसी भी धारणा को असत्य नहीं कहा जा सकता और यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनमें कोई भी धारणा किसी दूसरे से विरुद्ध है। इन सब धारणाओं का जो लक्ष्य है, वह सब एक ही है -' यह समयसार। बिल्कुल खोटी बात है। यह अन्तिम भूमिका में लिखा है। यह दिल्ली से छपा है न?

भाई! यह आत्मा जो कहलाता है, वह आत्मा तो कहीं वेदान्त कहो या दूसरा कहो, या लाख बात करे... यह आत्मा है, असंख्यप्रदेश जिसका क्षेत्र, वस्तु एक असंख्य प्रदेश क्षेत्र, अनन्त अनन्तानन्त क्षेत्र के प्रदेशों का माप नहीं, कहीं हद नहीं, इससे अनन्त... अनन्त गुण और इतनी ही उनकी पर्यायें। कहाँ है ऐसा आत्मा है? लाओ! समझ में आया? अज्ञानियों ने तो असर्वांश को सर्वांश माना है। यह तो सर्वांश पूरी चीज ऐसी अखण्ड है। नेमचन्दभाई!

इसलिए यहाँ कहते हैं कि यह जो ब्रह्मा आदि शब्द पड़े हैं, यह वे नहीं। ऐसा जो आत्मा है, वह जो पंच परमेष्ठीरूप परिणमता है, उसे ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा जाता है। आहा...हा...! कितने ही इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि उनने तो ऐसा कहा है। भक्तामर स्तोत्र में कहा है। क्या आता है? विबुध बुध - ऐसा आता है। तुम बुद्ध कहते हो परन्तु यह बुद्ध अर्थात् इस स्वरूप है, उसे बुद्ध कहते हैं। अन्य बुद्ध को यहाँ बुद्ध कहते हैं - ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसलिए आचार्य लेते हैं, देखो! **'सो सिउ संकरू-विण्हु'** **'सो'** शब्द प्रयोग किया है पहला। वही आत्मा, वह जो आत्मा पहले कहा, पंच परमेष्ठी के स्वरूप से ध्यान करने योग्य, ऐसा कहा। **'सो सिउ, सो संकरु, सो विण्हु सो सो रुद्द वि सो बुद्धु, सो जिणु ईसरु बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धुं'** देखो! आचार्य ने एक-एक शब्द में **'सो'** शब्द लिखा है। फिर ब्रह्मा, विष्णु वह आत्मा - ऐसा नहीं। ऐसा जो आत्मा कहा... समझ में आया?

अरे भाई! यह तो वस्तु की स्थिति है। भगवान ने देखा इसलिए कुछ कहा दूसरा और देखा दूसरा - ऐसा नहीं है। ऐसी चीज ही है। अनादि स्वभाव के - छह प्रकार के स्वभाव का पिण्ड वह छह द्रव्य है। छह प्रकार के स्वभाव के पिण्ड छह द्रव्य, ऐसी अनादि वस्तु है। उसका एक-एक आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड है। अनन्त... अनन्त किसे कहते हैं? आहा...हा...! आकाश आकाश आकाश आकाश आकाश कहीं 'है' मैं से 'नहीं' आवे ऐसा नहीं है। उससे अनन्त गुने गुण... क्षेत्र इतना ऐसा न लो, क्षेत्र भले ही इतना हो - क्षेत्र असंख्यात प्रदेशी, उसके गुणों की-जैसे यहाँ प्रदेश का कहीं अन्त नहीं है, यह उससे अनन्तगुने (गुण हैं)। उसके अन्त को क्या कहना? ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का स्वरूप - पिण्ड भगवान का निर्मल परिणमन होना, उसे यहाँ वास्तव में आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

**'वही शिव है...'** ऐसा शब्द पड़ा है न? देखो! **'वही शिव है...'** यह शिव है, ऐसा नहीं। जो दुनिया में शिव कहलाते हैं, वे आत्मा - ऐसा नहीं। ऐसा आत्मा, उसे शिव (कहते हैं)। भगवान ऐसी बात है। समझ में आया? क्योंकि शिव अर्थात् निरूपद्रव कल्याणस्वरूप है। **'वह कल्याण का कर्ता है, उसका ध्यान करने से अपना हित होता है।'** समझ में आया? इसलिए आत्मा भी स्वयं शिव है परन्तु ऐसा आत्मा, हाँ! आहा...हा...!

एक समय में द्रव्य जो शक्तिवान्। द्रव्य अर्थात् शक्तिवान्; शक्तियाँ अनन्तानन्त और उनका परिणमन भी जितने गुण उतना अनन्तानन्त, जिसकी एक समय में पर्याय। एक समय में, हाँ! वैसे त्रिकाल वह अलग बात है। एक समय में अनन्तगुण की पर्यायें कितनी? कि लोक के आकाश के, अलोक के आकाश के प्रदेश से भी एक समय की एक जीव की अनन्त गुनी पर्यायें.... समझ में आया? जितने गुण हैं, उनकी प्रत्येक समय की पर्याय है या नहीं? 'पर्याय विजुत्तम् दव्वम्' अथवा 'पर्याय विजुत्तम् गुण' नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया?

आत्मा को शिव कहते हैं क्योंकि (आत्मा) कल्याण का कर्ता है। इसलिए इस आत्मा का पूर्ण स्वरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और ध्यान करने से कल्याण होता है, इसलिए

इस आत्मा को शिव कहा जाता है। दूसरा जगत् का शिव कहते हैं, वह नहीं।

वह शंकर कहने में आता है। आनन्द का लाभ देनेवाला आत्मा है। भगवान आत्मा ऐसे अनन्त गुणवाला परमात्मा स्वयं सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, वैसा आत्मा। उस आत्मा को यहाँ शंकर कहा जाता है। शंकर कहते हैं वह यह आत्मा - ऐसा नहीं। ऐसे आत्मा में अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु का ध्यान करने से आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द-सुख पड़ा है, वह उस दशा में आनन्द की प्राप्ति सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर होती है; इसलिए उस आत्मा को शंकर कहा जाता है। समझ में आया?

वह विष्णु है। समझ में आया? **'वह केवलज्ञान की अपेक्षा से सर्व लोकालोक का ज्ञाता होने से सर्व व्यापक है।'** इस अपेक्षा से व्यापक, हाँ! ऐसे क्षेत्र से नहीं। भगवान ज्ञान.... प्रवचनसार में लिया है न? ज्ञेय प्रमाण ज्ञान, ज्ञेय लोकालोक (गाथा २३) **'आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाण'** और ज्ञेय लोकालोक। समझ में आया? प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत लिखा है, बहुत रखा है। समयसार (आदि में) तत्त्वों से भरे हुए ढेर पड़े हैं, कहीं ढूँढने बाहर के किसी का आधार लेने की आवश्यकता नहीं है, इतना भरा है अन्दर। समझ में आया?

विष्णु उसे कहते हैं, उसके एक ज्ञान की दशा के प्रगट विकास में उसकी - गुण की शक्ति ही ऐसी है कि लोकालोक को जानने की ताकत रखती है। वह प्रगट दशा लोकालोक को पहुँचती है.... जानने के लिए, हाँ! क्षेत्र से पहुँचती है या उसकी पर्याय में पड़ जाती है - ऐसा नहीं है। उस सम्बन्धी का ज्ञान पूरा स्वयं के ज्ञान में आ जाता है, इसलिए ऐसा भी आचार्य ने कहा कि लोकालोक व्यापक, वह ज्ञान ज्ञेयगत है और ज्ञेय ज्ञानगत है। दोनों बातें ली हैं न? प्रवचनसार में दोनों लिया है। यह समझाने के लिए। जितना ज्ञेय लोकालोक, वह ज्ञान ज्ञेयगत है। इस अपेक्षा से; आ नहीं गया, जानने की अपेक्षा से (कहा है) और ज्ञान में ज्ञेय आये हैं। ज्ञान, ज्ञेयगत है और ज्ञेय, ज्ञानगत है। लोकालोक ज्ञेय ज्ञान में - जानने की पर्याय में आ गये हैं। वह नहीं परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान - इस अपेक्षा से ज्ञेय ज्ञानगत है - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा केवल ऐसा उसका.... उसे संक्षिप्त कर डालना कि ऐसा केवल नहीं होता, ऐसा नहीं होता। अमुक नहीं होता! अमुक नहीं होता, केवलज्ञान में शंका करने लगे, हाँ! भूत, भविष्य में ऐसा नहीं होता, अमुक ऐसा नहीं होता। भगवान! यह वस्तु का स्वभाव है। भाई! उसमें ऐसे उलटे तर्क को स्थान नहीं होता। सुलटे तर्क को स्थान होता है। श्रुतज्ञानरूपी तर्क को (स्थान होता है)। कहो, समझ में आया?

इसे रुद्र कहा जाता है क्योंकि जैसे रुद्र दूसरे को भस्म करता है, वैसे भगवान आत्मा आठ कर्म को भस्म कर डालता है। भगवान आत्मा ही रुद्र है। दूसरा रुद्र वह यह नहीं परन्तु यह आत्मा, वह रुद्र। समझ में आया? आठों ही कर्मों का भुक्का! उसका अर्थ - अवस्था की कमजोरी का नाश। इस कारण रजकण की पर्याय आठ कर्म की है, उसका रूपान्तर उसकी पर्याय में जो कर्मरूप अवस्था है, वह अवस्था रूपान्तर होकर साधारण जड़ की अवस्था-पुद्गल की अवस्था हो जाती है। यह आठ कर्म का नाश (किया) - ऐसा कहा जाता है। यह भगवान आत्मा रुद्र है। समझ में आया? शंकर ने तीसरी आँख से काम को भस्म किया - ऐसा आता है या नहीं? तीसरी आँख से ऐसा (चलाया)। काम तो यहाँ है, वहाँ बाहर में कहाँ काम था? समझ में आया?

**'बुद्धु'** यह बुद्ध भी भगवान सच्चा बुद्ध। यह सर्व तत्त्वों का यथार्थ ज्ञाता बुद्ध है। **'कोई बौद्धों को मान्य बुद्ध देव यथार्थ सर्वज्ञ परमात्मा नहीं हैं।'** बुद्ध है, वह सर्वज्ञ है ही नहीं। वह तो साधारण प्राणी था। मिथ्यात्व था, अज्ञान था, एकान्त मिथ्यादृष्टि था। वह लोगों को रुचता नहीं कितने ही कहते हैं, अर...र...र...! बुद्ध भगवान हैं न! भाई! परन्तु भगवान किसके? सुन न! समझ में आया?

परमात्मा एक समय में पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, वह बुद्धं अर्थात् ज्ञानस्वरूप पूर्ण परिणमता है - ऐसी-

ऐसी अनन्त शक्तियाँ आत्मा रखता है; इसलिए इस आत्मा को बुद्ध कहते हैं - ऐसा आत्मा जहाँ जिसे प्रतीति में नहीं और क्षणिक को भी आत्मा मानता है, वह मान्यता झूठी, अत्यन्त अज्ञानभाव है, संसारभाव है। समझ में आया?

गाँधीजी ने श्रीमद् से प्रश्न किया है कि यह बुद्ध हैं, वे मोक्ष प्राप्त हुए हैं या नहीं? सत्ताईस प्रश्न, सत्ताईस प्रश्न किये हैं। गाँधीजी के समय में सत्ताईस प्रश्न, सत्ताईसवें वर्ष में हैं। सत्ताईसवें वर्ष में सत्ताईस प्रश्न हैं। समझ में आया? तो उन्होंने कहा कि बौद्ध के कथन और शास्त्र देखने से उनकी मुक्ति नहीं हो सकती और इसके अतिरिक्त दूसरे उनके अभिप्राय हो तो अपने को जानने मिले नहीं, तब तक हम कैसे कहें? परन्तु उन्होंने जो अभिप्राय कहें हैं, उससे तो वे मुक्ति को प्राप्त नहीं हुए हैं। सत्ताईस वर्ष में है। समझ में आया?

बौद्ध लोगों को ऐसा है कि आहा...हा...! बहुत परोपकारी थे और ऐसा था... ऐसा कहते हैं न लोग? हैं? सत्ताईसवाँ वर्ष है और सत्ताईस प्रश्न हैं। बौद्ध का यहाँ होगा? आर्य धर्म क्या सबसे उत्पन्न हुआ है? आर्य धर्म क्या है? सब पता है। है इसमें? देखो, देखो, बौद्ध हैं, वे मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए। उनके शास्त्र देखने से उस कथन में ऐसा अभिप्राय है कि उन्हें मुक्ति नहीं हो सकती और उनके दूसरा कोई अभिप्राय हो तो अपने को जानने मिला नहीं। जानने मिलने के बाद उसका हम प्रमाण और निर्णय कर सकते हैं, इसमें कहीं है। अलग है, सत्ताईसवाँ है। बहुत करके... लाओ, यह ठीक, अब आया?

(प्रश्न- २०, पत्रांक - ५३०) **'बुद्धदेव भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए, यह आप किस आधार से कहते हैं?'** सत्ताईस प्रश्नों में बीसवाँ प्रश्न है। **'उनके शास्त्रसिद्धान्तों के आधार से। जिस प्रकार से उनके शास्त्रसिद्धान्त हैं, उसी के अनुसार यदि उनका अभिप्राय हो तो वह अभिप्राय पूर्वापर विरुद्ध भी दिखाई देता है और वह सम्पूर्ण ज्ञान का लक्षण नहीं है।**

**यदि सम्पूर्ण ज्ञान न हो तो सम्पूर्ण राग-द्वेष का नाश होना सम्भव नहीं है। जहाँ वैसा हो वहाँ संसार का सम्भव है। इसलिए, उन्हें सम्पूर्ण मोक्ष प्राप्त हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता और उनके कहे हुए शास्त्रों में जो अभिप्राय है, उसके सिवाय उनका अभिप्राय दूसरा था, उसे दूसरी तरह जानना आपके लिए और हमारे लिए कठिन है और वैसा होने पर भी यदि कहें कि बुद्धदेव का अभिप्राय दूसरा था तो उसे कारणपूर्वक कहने से प्रमाणभूत न हो, ऐसा कुछ नहीं है।'**

लाओ दूसरा अभिप्राय क्या था? वह लाओ। मोक्ष उन्हें है नहीं। मोक्ष कहाँ से लावे? इस जगत में बहुत बढ़ जाये, यह मान्यता करोड़ों अरबों में (होवे), इसलिए उत्कृष्ट है, बड़ा है - ऐसा किसने कहा? समझ में आया? इनकी बहुत मान्यता है न! चीन, और सर्वत्र बहुत है परन्तु क्या है? साधारण बात की है।

(शेष अगले अंकमें..)

## पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीकी ११३वीं जन्म जयंती आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न

परम उपकारी पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीकी ११३वीं जन्म जयंती **'गुरु- गौरव'**, सोनगढ़में आनंदोल्लासपूर्वक मनाई गई । इस मंगल अवसर पर बंबई, कोलकाटा, अहमदाबाद, आग्रा, भावनगर इत्यादि शहरोंसे अनेक मुमुक्षुओंने लाभ लिया।

दि. १९-०५-२०२४ जन्म जयंती के दिन बालकुंवर का पारनाझुलन, जन्मबधाई एवं गुरुभक्ति आदि कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए ।

# सौभाग्यमूर्ति पूज्यश्री सौभाग्यभाईके प्रति सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा गुण संकीर्तन

परम महात्मा पू. श्री सोभाग्यभाई महात्मा श्रीमद् राजचंद्रकी भक्तिमें एकलयसे रहे थे। ऐसी जो उनकी उत्कृष्ट भक्ति मुमुक्षु जीव के लिए आदर्शरूप है। जिस पराभक्तिसे गोपांगनाएं वासुदेवकी भक्तिमें रही थी और जिस भक्तिके कारण आत्मा परमात्मामें एकरूप हो जाए ऐसी पराभक्ति उनको प्राप्त थी। उनमें आत्मार्थीता, सरलता, लघुता आदि अनेक गुण थे। तथापि उपरोक्त पराभक्तिवशात् एक विशिष्ट गुण यह था कि " ज्ञानीके मार्ग ऊपर चलनेका उनका अद्‌भुत निश्चय" देखकर कृपालुदेवने इस खास गुण के प्रति (पत्रांक - ७८३में) मुमुक्षुओंका ध्यान खींचा है। उनको प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञानी कृपालुदेव और परमात्मामें अंतर ही नहीं था। ऐसी सम्यक्‌प्रतीति पूर्वक कृपालुदेवके प्रति उनको अचल प्रेम था। जिसके कारण अंतमें वे ज्ञानदशाको प्राप्त हुए और इस भवके अंतिम कुछ ही गिनतीके दिनोंमें अनंत भवका छेदक सम्यक्त्व प्राप्त करके एक भवमें अनंत भवकी कमाई कर ली।

पू. श्री सौभाग्यभाईके जीवन परिचयके विषयमें संक्षेपमे उल्लेखनीय है कि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत नाजुक थी कि जिस स्थितिमे सामान्य मनुष्यको तो अनुकूल संयोगोंकी प्राप्ति करनेमें ही पूरी जिंदगी व्यतीत हो जाय। फिर भी उनकी आत्म कल्याणकी अभिलाषा असाधारण थी जो किसी भी मुमुक्षुके लिए गवेशणीय है।

परम कृपालुदेवकी भेंट होनेके बाद उनके प्रत्यक्ष समागममें रहेनेके लिए उनकी आत्मा हमेशा चिंतित रहा करती थी। और इन छः-सात वर्षकी अंतिम आयुके दौरान वे ५६० दिन भिन्न-भिन्न स्थानोमें प्रत्यक्ष समागममें रहे थे। यह कह सकते हैं कि कृपालुदेवका प्रत्यक्ष समागम यह उनके जीवनकी एक परिणति बन गई थी। और कोई भी दिन ऐसा नहीं छूटा होगा कि उनको कृपालुदेवका स्मरण नहीं हुआ हो। कृपालुदेवमें ही उनका जीव लगा रहता था और वही उनकी परिणतिकी भजना थी। अंतिम अवस्थामें उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे वह उनकी पात्रताकी चरमसीमाको दर्शानिवाले हैं। उन्होंने कृपालुदेवको लिखा था कि 'अब रोगके कारणसे मेरा देह नहीं छूटेगा किंतु आपके वियोगकी वेदनासे देह छूटेगा'! इसके पहेले उन्होंने अनेक पत्रोंमें अनेक प्रकारसे सायला पधारने हेतु विनंती की थी किंतु ऐसा लगता है कि वियोगकी वेदना तीव्र होने के लिए ही वे सायला आने में देर करते रहे। जब पू. श्री सौभाग्यभाईके अंतिम हदके पात्रताके परिणाम देखे, कि शीघ्र ही वे प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आ पहोंचे और वहाँसे 'बीजज्ञान' देने के खास प्रयोजनार्थ उनको ईड़र ले गये। जिसके फलस्वरुप ईडरसे आने के बाद

उनको निर्विकल्प परमार्थ भवछेदक सम्यक्‌दर्शनकी - आत्म साक्षात्कारकी प्राप्ति हुई थी।

उनकी पात्रता विशेषके लिए शब्द ढूंढने पर भी मिलते नहीं है। परंतु कृपालुदेवके शब्दोमें वे उनके लिए 'पेट देने योग्य' थे। कितने ही प्रसंग उनकी असाधारण और अचिंत्य पात्रताके संकेतरूप हैं। जैसेकि :

(१) जिनके प्रथम मिलनसे कृ. देवको आत्मज्ञानके बीजभूत ज्ञानकी स्मृति हुई, जागृति हुई। और थोडेही दिनों में आत्म साक्षात्कार हुआ। जिसकी आत्मा में ऐसा अद्‌भुत और आश्चर्यकारी निमितत्त्व हो उनकी पात्रताके लिए क्या कहना? वास्तवमें एसी सुयोग्यता वचनातीत है।

(२) गुरु स्थान पर बिराजमान ऐसे कृ. देव उनके सत्‌संगको चाहते थे, कि जिससे उस सत्‌संगके योगमें स्वयंके आत्मगुण आविर्भाव होते थे।

(३) उनकी पात्रता विशेषको लक्ष्यमें रखकर अनेक पत्र लिखते वक्त गुण वाचक संबोधन लिखे हैं जो निम्न रूपमें हैं।

❊ सन. १९४६ के पत्रोमें : 'आत्मविवेक संपन्न', 'सौभाग्यमूर्ति सौभाग्य।'

❊ सन. १९४७ के पत्रोंमें : 'परम पूज्य केवलबीज संपन्न', 'सर्वोत्तम उपकारी', 'परम पूज्यश्री', 'जीवनमुक्त', 'सौभाग्यमूर्ति', 'महाभाग्य', 'शांतमूर्ति', 'परम विश्राम', 'स्वमूर्तिरूप सौभाग्य।'

❊ सन. १९४८ के पत्रोंमें : 'स्मरणीय मूर्ति', 'हृदयरूप', 'आत्मस्वरूपरूप हृदयरूप विश्राममूर्ति', 'स्मरणरूप', मुमुक्षु पुरुषोंको अनन्य प्रेमसे सेवन करने योग्य, परम सरल, और शांतमूर्ति ऐसे श्री 'सुभाग्य', 'मुमुक्षु जनको परम हितस्वी, सर्व जीव प्रति परमार्थ करुणादृष्टि है जिनकी ऐसे निष्काम, भक्तिमान श्री सुभाग्य।'

❊ सन. १९४९ के पत्रोंमें : 'मुमुक्षुजनके परम विश्रामरूप', 'मुमुक्षुजनके परम बंधव, परम स्नेही श्री सोभाग।'

❊ सन. १९५० के पत्रोंमें : 'मुमुक्षुजनके परम हितस्वी, मुमुक्षु पुरुष श्री सोभाग', 'सत्संग योग्य, परम स्नेही श्री सोभाग', 'पूज्यश्री।'

❊ सन. १९५१ के पत्रोंमें : 'उपकारशील', 'आर्यश्री', 'शाश्वत मार्ग नैष्ठिक', 'सत्संग नैष्ठिक', 'परमार्थ नैष्ठिकादि गुण संपन्न', 'परमार्थ नैष्ठिक', 'आत्मार्थी।'

❊ सन. १९५२-५३ के पत्रोंमें : 'परम नैष्ठिक, सत्संग योग्य, आर्यश्री सोभाग', 'आत्मनिष्ठ, 'परम उपकारी आत्मार्थी, सरलतादि गुणसंपन्न श्री सोभाग!'

(४) वचनामृत ग्रंथमें, मुमुक्षु जीव के लिए प्रयोजनभूत ऐसा अद्वितीय तत्त्व जो कृपालुदेवके हृदयमें भरा था वह पू. श्री सौभाग्यभाईकी पात्रतावशात् प्रसिध्द हुआ और उस समयके और भविष्यके आत्मार्थी जीवों पर अनंत उपकार हुआ। अत: तत्त्व निरूपणार्थ कृपालुदेवका मुमुक्षु जगत पर जितना उपकार है उतना ही उपकार पू. श्री सौभाग्यभाईका है।

(५) शिष्य गुरुका उपकार व्यक्त करे और तदर्थ बंधन नमस्कार आदि भावों से विभोर हो जाय वह प्रसिध्द है । किंतु पू. श्री सौभाग्यभाईकी पात्रता कैसी आश्चर्यकारक समझनी कि गुरु स्थान पर विराजमान ऐसे कृपालुदेवने उनका उपकार गाकर वंदन और चरण स्पर्श आदि भावोंको व्यक्त किया है!!! जो निम्न रूपमें है :

"…..हे श्री सोभाग ! तेरे सत्समागमके अनुग्रहसे आत्मदशाका स्मरण हुआ, उसके लिये तुझे नमस्कार करता हूँ।" (संस्मरण पोथी - २/२० - पृष्ठ - ८४०)

"…..आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं। कलिकालमें परमात्माको किन्ही भक्तिमान पुरुषों पर प्रसन्न होना हो, तो उनमेंसे आप एक हैं । हमें आपका बड़ा आश्रय इस कालमें मिला और इसीसे जीवित हैं।" (पत्रांक २१५ - पृष्ठ - २७३)

"…..वेदनाके समय साता पूछनेवाला चाहिये, ऐसा व्यवहारमार्ग है परन्तु हमें इस परमार्थमार्गमें साता पूछनेवाला नहीं मिलता; और जो (पू. श्री सौभाग्यभाई) हैं उनसे वियोग रहता है। तो अब जिनका वियोग है ऐसे आप हमें कीसी भी प्रकारसे साता पूछें ऐसी इच्छा करते हैं।" (पत्रांक - २४४ - पृष्ठ २८७)

"…..आपने हमारे लिये जन्म धारण किया होगा, ऐसा लगता है। आप हमारे अथाह उपकारी हैं। आपने हमे अपनी इच्छाका सुख दिया है, इसके लिये हम नमस्कारके सिवाय दूसरा क्या बदला दें? परन्तु हमें लगता है कि हरि हमारे हाथसे आपको पराभक्ति दिलायेंगे; हरिके स्वरूपका ज्ञान करायेंगे, और इसे ही हम अपना बडा भाग्योदय मानेंगे।" (पत्रांक - २५९ - पृष्ठ - २९६)

"…..आपका समागम अधिकतासे चाहता हूँ। उपाधिमें यह एक अच्छी विश्रांति है। कुशलता है, चाहता हूँ।" (पत्रांक - १३३ - पृष्ठ - २२८ )

"अपूर्व स्नेहमूर्ति आपको हमारा प्रणाम पहुँचे। हरिकृपासे हम परम प्रसन्न पदमें हैं। आपका सत्संग निरंतर चाहते हैं।" ( पत्रांक - २५५ - पृष्ठ - २९२)

"…..चित्त बहुत बार आपमें रहा करता है। जगतमें दूसरे पदार्थ तो हमारे लिये कुछ भी रुचिकर नहीं रहे हैं।" ( पत्रांक - ३५७ - पृष्ठ - ३३२)

"…..एक आत्म वार्तामें ही अविच्छिन्न काल रहे, ऐसे आप जैसे पुरुषके सत्संगके हम दास हैं। अत्यन्त नम्रतासे हमारा चरणके प्रति नमस्कार स्वीकार कीजिये। यही विनंती।" ( पत्रांक - ४५३ - पृष्ठ - ३८२ )

कृपालुदेवके समागममें अनेक भक्तरत्न आये थे उनमें पू. श्री सौभाग्यभाई भक्त शिरोमणि थे यह कहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। और इसीलिये कृ. देवकी स्पष्ट आज्ञा अनुसार "श्री सौभाग्य मुमुक्षुको विस्मरण करने योग्य नहीं है।" इस प्रकारकी आज्ञा करके गये हैं। तदनुसार कृपालुदेवके अनुयायी मुमुक्षु समाजको उनकी मुख्यता करनी घटित है। इस आज्ञाका उल्लंघन-अवगणना होना उचित नहीं है।

"श्री सुभाग्य प्रेमसमाधिमें रहते है।" (पत्रांक - ३०६) कृपालुदेवके इस वचन अनुसार पू. श्री सौभाग्यभाईका प्रेम, साधककी समाधिके स्थान पर था, ऐसा स्पष्टरूपसे सूचित होता है। उस परसे पू. श्री सौभाग्यभाईका परिणमन बोध देता है कि ज्ञानीपुरुषको पहिचानने और प्राप्त करने हेतु अथवा कृपालुदेवको पहिचानने और प्राप्त करने हेतु पू. श्री सौभाग्यभाई बनना चाहिये। और अगर ऐसी योग्यता प्राप्त हो जाय तो निश्चित ही "ज्ञानीकी कृपादृष्टि वही सम्यक्‌दर्शन" की प्राप्ति हो जाय।

परम कृपालुदेवके प्रत्यक्ष योगमें पू. श्री सौभाग्यभाईके आत्मा ऊपर जो उपकार हुआ वह उनके ही शब्दोमें निम्न पत्रमें प्रसिध्द हुआ है।

सायला - जेठ - शुक्ल - १४ रवि १९५३

परम पुरुष, तरणतारण, परमात्मदेव, कृपानाथ, बोधस्वरूप, देवाधिदेव, महाप्रभुजी, सहजात्म स्वरूपकी सेवामें। बंबई ।

श्री सायलासे लि. आपका आज्ञांकित सेवक पामरमें पामर सोभाग लल्लुभाईके नमस्कार पढना।…..

"…..देह और आत्मा भिन्न है। देह जड है। आत्मा चैतन्य है। उस चेतनका भाग प्रत्यक्ष तौर से भिन्न समजमें नहीं आता था। लेकिन ८ दिनसे आपकी कृपासे अनुभव गोचरसे दो टूक प्रगट भिन्न दिखाई देता है और रात-दिन यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है। यह आपको सहज जानने हेतु लिखा है….."

उपरोक्त पत्रके अनुसंधानमें कृपालुदेवके शब्द निम्न रूपमें है।

"…..श्री सौभागने देहका त्याग करते हुए महामुनियोंको भी दुर्लभ ऐसी निश्चल असंगतासे निज उपयोगमय दशा रखकर अपूर्व हित किया है, इसमें संशय नहीं है। इस क्षेत्रमें, इस कालमें श्री सोभाग जैसे विरल पुरुष मिलते हैं, ऐसा हमें वारंवार भासित होता है। श्री सोभागकी सरलता, परमार्थ संबंधी निश्चय, मुमुक्षुके प्रति उपकारशीलता आदि गुण वारंवार विचारणीय है।" (पत्रांक - ७८२ - पृष्ठ - ६१६ )

"मुमुक्षुको श्री सोभागका विस्मरण करना योग्य नहीं है।"

अंतमें पू. श्री सोभागभाई के प्रति उपकार अंजलि व्यक्त करते हुए विराम लेते है।

*

# भयंकर अपराधकी जननी - ईर्ष्याकी परिणति

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

**'कभी ऐसा लगता है कि इसमें सुख है, किन्तु वास्तवमें वह सब दुःखरूप है।'** कभी कल्पनासे ऐसा लगता है, मिथ्या अभिप्रायसे लगता है। एक निश्चय कर रखा है कि, यह अच्छा है। यह सुखका कारण। वास्तवमें निश्चय कर रखा है और कुछ नहीं है। इसीलिये ऐसा लगता है। वास्तवमें ऐसा है नहीं। **'स्वर्गमें सुख और नरकमें दुःख है ऐसा दिखायी देता है। किन्तु देवलोकमें भी अन्तरमें तो आकुलता है, और आकुलता ही दुःख है।'** ऊपर-ऊपरसे स्थूलरूपसे देखें तो देव सुखी हैं, नारकियोंको दुःख है ऐसा हम लोग कहते हैं। वास्तवमें सम्यक्‌दृष्टिके अलावा कोई भी देव सुखी नहीं है।

वहाँ अनुकूलताके साधनोंकी कमी है सो बात नहीं। सहूलियतें भरपूर हैं, बेहद होती हैं। शरीरमें रोग नहीं आते, बुढ़ापा नहीं आता, बचपन नहीं होता। शरीरमें दुर्गंध नहीं होती। कहीं भी अंधेरा नहीं होता। केवल प्रकाश-प्रकाश और सभी परमाणु दैवी होते हैं। पुद्‌गल परमाणुकी अवस्था भी दैवी होती है कि, दिखनेमें सब अच्छा व मनमोहक लगे। फिर भी वहाँ दुःख किस बातका? तो कहते हैं कि, वहाँ भी हीनाधिक पुण्यवंत होते हैं। सबके सब ईर्ष्याकी आगमें सुलगते हैं। क्योंकि सेरके ऊपर सवा सेर। यहाँ जैसे पैसेवाला आदमी ऊपरवालेको देखता है। मुझे गाँवमें सबसे अधिक धनवान होना है। फिर कहेगा, पूरे देशमें होना है, फिर सोचेगा पूरी दुनियामें हो जाऊँ तो ठीक। और प्रायः जिसके पास अधिक होगा उसकी ईर्ष्या दूसरोंको होगी। बिना विकल्पके ऐसी जीवोंकी परिणति होती ही है। बस! इस परिणतिका दुःख होता है।

मुमुक्षु : विकल्प नहीं हो फिर भी परिणतिका दुःख!

पू. भाईश्री : परिणतिमें वह दुःख होता है, इसका एक दृष्टांत देता हूँ।

जैसे रास्ते पर एक साइकिलवालेका और गाड़ीवालेका टकराव हो गया। इसमें गलती भले ही साइकिलवालेकी हो, मार गाड़ीवालेको पड़ेगी। वहाँ इकट्ठी हुई भीड़ बिना सोचे बिना देखे, जो गाड़ीवाला होगा उसे पीटने लगेगी। इसका क्या कारण? और तो सारे, जो साइकिलवाला टकराया है, उसके कोई सगे-सम्बन्धी तो नहीं होते। होते हैं कोई? वरना तो मान सकते हैं कि, चलो मेरे बेटेको

चोट लगी या मेरे रिश्तेदारको चोट लगी। ऐसा कुछ भी न हो, न कोई जान-पहिचान, तो भी गाड़ीवालेको ही सब मारने लगते हैं कि नहीं? यह क्या सूचित करता है?

मुमुक्षु : ईर्ष्याकी परिणति।

पू. भाईश्री : ईर्ष्याकी परिणति सबको चालू ही है। जैसे ही उदय आया कि उसका उपयोग अर्थात परिणमन दिखने लगेगा। किसीका कोई अच्छा देख नहीं सकता। और यह ईर्ष्या किसीको सिखानी नहीं पड़ती। यह जीवका बहुत बड़ा अपराध है। अधोगतिमें ले जाने वाला अपराध है। देव एकेन्द्रिय होते हैं। देवलोकका आयुष्य पूरा हो और एकेन्द्रिय हो जाय। अब वहाँ तो उन्होंने कोई कारखाना शुरु नहीं किया। वहाँ कोई कतलखाना नहीं है और हिंसाका कोई कारखाना नहीं है। धंधा-व्यापार वहाँ कुछ है नहीं। फिर भी उनके परिणाम बिगड़ने का क्या कारण? ईर्ष्याकी परिणति बहुत तीव्र होती है वहाँ। और उसकी आकुलता भी उनको बहुत होती है। एक ज्ञानीपुरुष जानते हैं कि इस ईर्ष्याकी आकुलता बहुत है उन्हें।

मुमुक्षु : ईर्ष्याकी ऐसी परिणति हो तब...

पू. भाईश्री : हमलोग जानते ही हैं कि गुरुदेवश्री (कानजीस्वामी) परम सत्य कहते थे कि नहीं? हमलोगने तो गुरुदेवश्रीको देखा है। उनका जीवन हमने देखा है। उनका परिचय भी हमलोगोंने किया है। परमसत्य कहते थे। फिर भी देरावासी, स्थानकवासी और दिगम्बर तीनों संप्रदायवालोंने अत्यधिक विरोध किया कि नहीं किया? क्यों किया बताईये ज़रा? किसी की आजीविकामें बाधा आये ऐसा तो कोई प्रयत्न गुरुदेवने नहीं किया न? किसी के साथ कोई झगड़ा, तूफान, तकरार करनेके लिये थोडी न गये हैं? वे तो केवल अपने कमरेमें ज्ञान, ध्यान करते थे और व्याख्यान हॉलमें आकर व्याख्यान करते थे, अपने कमरेमें बैठकर ज्ञान, ध्यान करते थे। फिर भी हज़ारो लोगोंने विरोध क्यों किया? ईर्ष्या। लोग इतना अधिक इन्हें पूजते हैं!

यदि वे कृपालुदेव जैसे गुप्त ज्ञानी होते तो इतना ज्यादा विरोध न होता। किन्तु ये प्रसिद्ध हो गये और इन्हें प्रसिद्धि व मान-सम्मान बहुत मिलने लगा। बस! बात खत्म। जिसको मान-सम्मान मिला उसका विरोध होगा, होगा और होगा ही। चाहे कितना ही शुद्ध जीवन क्यों न हो फिर भी विरोध करेंगे। उन लोगोंने किताबें लिखी हैं, श्वेताम्बर साधुओंने किताबें लिखी हैं, मैंने पढ़ी है। उन लोगोंने किताबें भर-भरकर अवगुण गायें हैं। हमारे वहाँ भावनगरमें करीब १०-१५ श्वेताम्बर परिवारोंने अपनी ओर आना शुरू किया। उन लोगोंने कहा, अहो! इतनी सुंदर बात है! हमें तो पता ही नहीं था। ये तो परम सत्य है। अच्छा हुआ हम इस तरफ श्रद्धान्वित हो गये वरना हमलोग तो भटक ही जाते। (हमने पूछा) आपको तो सोनगढ़ बहुत पासमें है तो कभी कबार आते तो हो। तो उनलोग ने कहा हमारे साधु महाराज हमें आने ही न देवे। पालिताना (शत्रुंजय) जाते हुए सोनगढ़ रास्तेमें आता है फिर भी हमारे साधु लोग आने ही नहीं देते। वे लोग स्पष्ट कह देते हैं कि, वहाँ नहीं जाना है, बीचमें वहाँ नहीं रुकना है।

और तो और हमें भडकाते भी बहुत हैं। कहेंगे देखो! उनकी ललाट पर कितना तेज़ है।

सर तो गंजा था न! तो कहते हैं, हररोज़ बादामका तेल इस्तेमाल करते हैं। रोज़ाना सिर पर मालिश कराते हैं बादामके तेलसें! क्या हमने कभी देखा है उनके पास बादामका तेल? फिर बढ़ाकर बोलेंगे कि, बादामका हलवा खाते हैं देखो न! उनका शरीर कितना सुंदर है। क्या है कि, गुरुदेव पुण्यवंत थे तो शरीर भी उनका सुंदर था। तो कहेंगे कि बादामका हलवा खाते हैं, पिस्ताके पापड़ खाते हैं। फिर तो सब अच्छा ही होवे न! और लम्बी लम्बी गाड़ीमें बैठकर घूमते हैं। सब बातोंमें गाड़ीमें बैठनेवाली बात सच्ची होती है और इसके साथमें पाँच बातें झूठी फैला दे ताकि लोग सारी बातोंको सच मान बैठे ऐसे। कहेंगे हाँ भाई! जब भावनगर आते हैं तब बड़ी गाड़ीमें उन्हें बैठे हुए तो देखा है, और उसवक्त गाड़ी खरीदी भी थी। यात्रा के वक्त। बडी गाड़ी तो अगल, बगलमें किसीके पास होती नहीं थी तब। तो कहेंगे देखिये! कैसी luxurious गाड़ी है! उस जमानेमें २५ हज़ारकी आयी थी second hand लेकिन ईर्ष्या जीवोंको मार देती है। बहुत-बहुत विरोध होनेका कारण वही था। वरना उन्होंने किसीका कुछ नही बिगाड़ा था। किन्तु सबको बहुत ईर्ष्या थी।

कृपालुदेव भी खंभातमें थोड़ी प्रसिद्धिमें आये कि विरोध होने लगा। क्यों? क्योंकि उन्हें सम्मान मिलने लगा। समाजमें सम्मान मिलेगा उनका विरोध तो निश्चितरूपसे होगा ही। वहाँ देवलोकमें तो बहुत ही ईर्ष्या होती है। वहाँ तो केवल पुण्यका योग और एक से बढ़कर एक, एक से बढ़कर एक होते हैं। उनमें बेहद आकुलता भोगते रहते हैं वहाँ।

**'देवलोकमें भी अन्तरमें आकुलता है, और आकुलता ही दुःख है। मूल दुःख तो आकुलताका है। देवोंको अन्तरमें जो संकल्प-विकल्प होता हैं वह सब आकुलता-दुःख है।'** उन्हें संकल्प-विकल्प...संकल्प-विकल्प चला ही करता है। और जो अधिक पुण्यवंत देव होंगे इनके आगे विवश होकर रहना पड़ता है जैसे यहाँपर नौकरको सेठके आगे दब कर रहना पड़ता है। Boss हो, ऊपरी अधिकारी, इनके आगे बेबस होकर इनके अनुसार चलना पड़ता है। ठीक ऐसा ही देवलोकमें भी है। वहाँ भी ईर्ष्या आकुलता पैदा करती है।

वहाँ ऐसा होता है कि, वैक्रियिक शरीर होता है तो उसके शरीरका विमान बना दे। हमलोग ये चित्रमें विमानके आगे चेहरा नहीं बनाते? ऐसे। वह मूलमें तो देवका शरीर है। अपने यहाँ क्या है विमान उड़ता है तो कान फ़ट जाये इतना शोर करता है। लेकिन हम करे भी क्या? गौण करके कानमें रुई लगाकर चलाते हैं। वहाँ ऐसा नहीं होता। बिना मशीनरी, मशीनरीयुक्त विमान नहीं होते। ऐसा पुण्ययोग होता है कि, शरीर विमानके आकारका बन जाता है जिसमें बैठकर सब निकल जाते हैं। कोई शोर-शराबा नहीं होता। यहाँ बिजली जाती है तो जनरेटरसे चलाना पड़ता है और जनरेटरकी फड़फडाहट कानमें चुभती है। अभी शादीके मौसममें सब डेकोरेशन आदि करते हैं वहाँ चाहे कितना भी सुशोभन किया हो आहा...आहा... सब करे, लेकिन यह कान फट जाये ऐसी आवाज़का क्या? कल्पनामें एक को गौण करके दूसरे को मुख्य करते हैं और कुछ नहीं है। देवलोकमें ऐसा नहीं होता। फिर भी आकुलता बहुत होती है। बहुत आकुलता है वहाँ।

**(प्रवचनांश...श्री 'स्वानुभूतिदर्शन' प्रवचन क्र.- ४१६)**

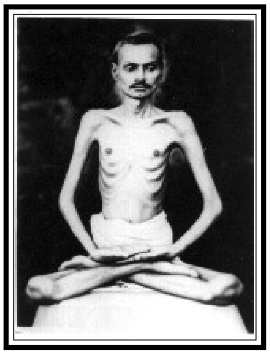

## परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाई सम्बन्धित हृदयोद्गार!!

आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं। कलिकालमें परमात्माको किन्हीं भक्तिमान पुरुषोंपर प्रसन्न होना हो, तो उनमेंसे आप एक हैं। हमें आपका बड़ा आश्रय इस कालमें मिला और इसीसे जीवित हैं। (पत्रांश-२१५)

✻

और वारंवार यही रटन रहनेसे 'वनमें जायें' 'वनमें जायें' एसा मनमें हो आता है। आपका निरन्तर सत्संग हो तो हमें घर भी वनवास ही है। (पत्रांश-२१७)'

✻

आज आपका एक पत्र मिला। पढ़कर हृदयांकित किया। इस विषयमें हम आपको उत्तर न लिखें इस हमारी सत्ताका उपयोग आपके लिये करना योग्य नहीं समझते; तथापि आपको, जो रहस्य मैंने समझा है उसे जताता हूँ कि जो कुछ होता है सो होने देना, न उदासीन होना, न अनुद्यमी होना, न परमात्मासे भी इच्छा करना, और न दुविधामें पड़ना, कदाचित् आपके कहे अनुसार अहंता आड़े आती हो तो यथाशक्ति उसका रोध करना, और फिर भी वह दूर न होती हो तो उसे ईश्वरार्पण कर देना; तथापि दीनता न आने देना। क्या होगा? ऐसा विचार नहीं करना, और जो हो सो करते रहना। अधिक उधेड़-बुन करनेका प्रयत्न नहीं करना। अल्प भी भय नहीं रखना, उपाधिके लिये भविष्यके एक पलकी भी चिन्ता नहीं करना, चिन्ता करनेका जो अभ्यास हो गया है, उसे विस्मरण करते रहना, तभी ईश्वर प्रसन्न होगा; और तभी परमभक्ति पानेका फल है; तभी हमारा-आपका संयोग हुआ योग्य है। और उपाधिमें क्या होता है उसे हम आगे चलकर देख लेंगे। 'देख लेंगे' इसका अर्थ बहुत गंभीर है। (पत्रांक-२१७).

✻

वेदनाके समय साता पूछनेवाला चाहिये, ऐसा व्यवहारमार्ग है; परन्तु हमें इस परमार्थमार्गमें साता पूछनेवाला नहीं मिलता; और जो है उससे वियोग रहता है। तो अब जिसका वियोग है ऐसे आप हमें किसी भी प्रकारसे साता पूछें ऐसी इच्छा करते हैं। (पत्रांश-२४४)

✻

अपूर्व स्नेहमूर्ति आपको हमारा प्रणाम पहुँचे। हरिकृपासे हम परम प्रसन्न पदमें हैं। आपका सत्संग निरंतर चाहते हैं। (पत्रांश-२५५)

✻

'ज्ञानधारा' सम्बन्धी मूलमार्ग हम आपसे इस बारके समागममें थोड़ा भी कहेंगे; और वह मार्ग पूरी तरह इसी जन्ममें आपसे कहेंगे यों हमें हरिकी प्रेरणा हो ऐसा लगता है।

आपने हमारे लिये जन्म धारण किया होगा, ऐसा लगता है। आप हमारे अथाह उपकारी हैं। आपने हमें अपनी इच्छाका सुख दिया है, इसके लिये हम नमस्कारके सिवाय दूसरा क्या बदला दें?

परंतु हमें लगता है कि हरि हमारे हाथसे आपको पराभक्ति दिलायेंगे; हरिके स्वरूपका ज्ञान करायेंगे, और इसे ही हम अपना बड़ा भाग्योदय मानेंगे। (पत्रांश-२५९)

## परम पूज्य श्री सौभाग्यभाईके देहविलय पश्चात परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित गुणानुवाद सभर पत्र

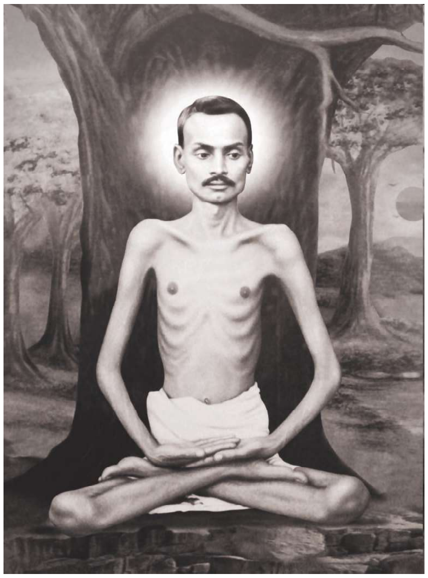

**पत्रांक ७८३**

बंबई, आषाढ़ सुदी ४, रवि, १९५३

**श्री सोभागको नमस्कार**

श्री सोभागकी मुमुक्षुदशा तथा ज्ञानीके मार्गके प्रति उनका अद्भुत निश्चय वारंवार स्मृतिमें आया करता है।

सर्व जीव सुखकी इच्छा करते हैं, परंतु कोई विरले पुरुष उस सुखके यथार्थ स्वरूपको जानते हैं।

जन्म, मरण आदि अनंत दुःखोंके आत्यंतिक (सर्वथा) क्षय होनेके उपायको जीव अनादिकालसे नहीं जानता, उस उपायको जानने और करनेकी सच्ची इच्छा उत्पन्न होनेपर जीव यदि सत्पुरुषके समागमका लाभ प्राप्त करे तो वह उस उपायको जान सकता है, और उस उपायकी उपासना करके सर्व दुःखसे मुक्त हो जाता है।

ऐसी सच्ची इच्छा भी प्रायः जीवको सत्पुरुषके समागमसे ही प्राप्त होती है। ऐसा समागम, उस समागमकी पहचान, प्रदर्शित मार्गकी प्रतीति और उसी तरह चलनेकी प्रवृत्ति जीवको परम दुर्लभ है।

मनुष्यता, ज्ञानीके वचनोंका श्रवण प्राप्त होना, उसकी प्रतीति होना, और उनके कहे हुए मार्गमें प्रवृत्ति होना परम दुर्लभ है, ऐसा श्री वर्धमानस्वामीने उत्तराध्ययनके तीसरे अध्ययनमें उपदेश किया है।

प्रत्यक्ष सत्पुरुषका समागम और उनके आश्रयमें विचरनेवाले मुमुक्षुओंको मोक्षसंबंधी सभी साधन प्रायः अल्प प्रयाससे और अल्पकालमें सिद्ध हो जाते हैं; परंतु उस समागमका योग मिलना बहुत दुर्लभ है। उसी समागमके योगमें मुमुक्षुजीवका चित्त निरंतर रहता है।

जीवको सत्पुरुषका योग मिलना तो सर्व कालमें दुर्लभ है। उसमें भी ऐसे दुःषमकालमें तो वह योग क्वचित् ही मिलता है। विरले ही सत्पुरुष विचरते हैं। उस समागमका लाभ अपूर्व है, यों समझकर जीवको मोक्षमार्गकी प्रतीति कर, उस मार्गका निरंतर आराधन करना योग्य है।

जब उस समागमका योग न हो तब आरंभ-परिग्रहकी ओरसे वृत्तिको हटाकर सत्शास्त्रका परिचय विशेषतः कर्तव्य है। व्यावहारिक कार्योंकी प्रवृत्ति करनी पड़ती हो तो भी जो जीव उसमें वृत्तिको मंद करनेकी इच्छा करता है वह जीव उसे मंद कर सकता है और सत्शास्त्रके परिचयके लिये बहुत अवकाश प्राप्त कर सकता है।

आरंभ-परिग्रहसे जिनकी वृत्ति खिन्न हो गई है, अर्थात् उसे असार समझकर जो जीव उससे पीछे हट गये हैं, उन जीवोंको सत्पुरुषोंका समागम और सत्शास्त्रका श्रवण विशेषतः हितकारी होता है। जिस जीवकी आरंभ-परिग्रहमें विशेष वृत्ति रहती हो, उस जीवमें सत्पुरुषके वचनोंका अथवा सत्शास्त्रका परिणमन

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १७ पर..)

## पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
## मंगल वाणी-सी.डी. १४-A

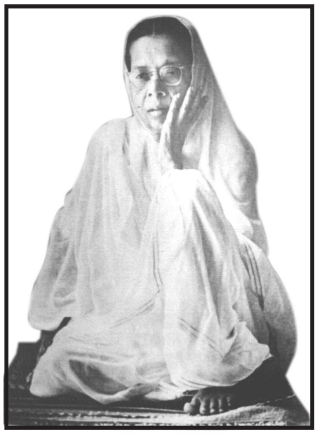

मुमुक्षु :- पर्याय द्रव्य को पहुँचती है और द्रव्य पर्याय को पहुँचता है, यह समझ में नहीं आता।

समाधान :- द्रव्य पर्याय को पहुँचता है। द्रव्य स्वयं परिणमित होकर पर्याय को पहुँचता है। और पर्याय स्वयं द्रव्य के आश्रयसे परिणमती है। पर्याय द्रव्य के आश्रयसे परिणमती है और द्रव्य स्वयं पर्यायरूप द्रव्य परिणमता है, अन्य कोई नहीं परिणमता। पर्याय अकेली भिन्न परिणमती नहीं। पर्याय द्रव्य के आश्रयसे परिणमती है। पर्याय द्रव्य को पहुँचती है, द्रव्य पर्याय को पहुँचता है। स्वयं ही, द्रव्य-गुण-पर्यायरूप द्रव्य स्वयं ही परिणमता है और पर्याय द्रव्य के आश्रयसे ही परिणमती है। अलग-अलग टुकड़े नहीं है। ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है।

स्वयं परिणमनेवाला (है)। स्वयं ही विभावदशारूप परिणमता है, स्वभावरूप स्वयं परिणमता है। स्वयं, स्वयं के आश्रयसे परिणमता है, द्रव्य परके आश्रयसे कोई परिणमता नहीं। पर्याय द्रव्य के आश्रय बिना अलग नहीं परिणमती। द्रव्य अपने आश्रयसे- द्रव्य के आश्रयसे पर्याय परिणमती है। द्रव्य कूटस्थ नहीं है कि परिणमता नहीं। द्रव्य स्वयं पर्यायरूप परिणमता है। द्रव्य ऐसा कोई कूटस्थ नहीं है कि उसमें कोई परिणामिक भाव ही नहीं है। तो ये बन्ध और मोक्ष कुछ होता ही नहीं, यदि द्रव्य नहीं परिणमता हो तो। तो यह संसार कैसा? यह मोक्ष की पर्याय प्रगट करनी, साधना करनी, गुरु उपदेश दे उसका विचार करके खुद को निर्णय करना, वह सब, द्रव्य परिणमता ही नहीं हो तो वह सब किसके लिये है? वह सब तो बाहर होता है, अपने में तो कुछ होता नहीं। इसलिये द्रव्य स्वयं विभावरूप परिणमता है, स्वभावरूप स्वयं परिणमता है। स्वयं ही परिणमता है, अन्य कोई नहीं परिणमता। द्रव्य स्वयं ही पर्याय को पहुँचता है और पर्याय द्रव्य के आश्रयसे ही परिणमती है। भिन्न-भिन्न टुकड़े नहीं हैं।

मुमुक्षु :- कोई जगह ऐसा आता है कि प्रर्याय विभाव ऊपर-ऊपर तैरता है। उसका अर्थ क्या?

समाधान :- विभाव अन्दर प्रवेश नहीं करता। विभाव उसका स्वभाव नहीं है। विभाव है वह चैतन्य में (नहीं प्रवेश करता)। चैतन्य में ऐसे राग-द्वेष (होते हैं) वह उसका मूल स्वभाव नहीं है, इसलिये ऊपर तैरते हैं। पर्याय स्वयं अपने पुरुषार्थ की मन्दतासे पर्याय होती है, लेकिन वह उसका मूल स्वभाव नहीं है।

जैसे स्फटिक का स्वभाव निर्मल (है)। स्फटिक निर्मल है, लेकिन उसे निमित्त के कारण, लाल-पीले के कारण स्फटिक पीला या लाल दिखता है वह सब ऊपर-ऊपर है, उसके अन्दर नहीं है।

ऐसे आत्मा में राग-द्वेषरूप परिणमता है स्वयं, परन्तु उसमें निमित्त कर्म का निमित्त है। स्वयं के पुरुषार्थ की मन्दतासे परिणमता है स्वयं, लेकिन उसके मूल में, उसके मूल स्वभाव में लाल या पीला या राग या द्वेष स्वभावरूप स्वयं परिणमता नहीं इसलिये ऊपर-ऊपर है।

जैसे स्फटिक में ऊपर-ऊपर परिणमता है, लेकिन वह ऊपर-ऊपर है। स्वयं में श्वेतपना जैसे तद्गत है, वैसा यह लाल-पीला तद्गत अंतर में नहीं है।

मुमुक्षु :- मूल स्वभाव में नहीं है।

समाधान :- मूल स्वभाव में नहीं है। ऐसे आत्मा मूल स्वभावसे ज्ञायक है। वैसे यह राग-द्वेषादि ऊपर-ऊपर

है। पर्याय अपनी होती है, परन्तु स्वभाव उसका नहीं है। ऊपर-ऊपर तैरता है।

मुमुक्षु :- प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूप परिणमते हैं और अन्य रूप नहीं परिणमते। इसमें दो द्रव्य की स्वतंत्रता बतायी और इससे मोह। परद्रव्य प्रति का मोह यानी एकताबुद्धि रहनेवाली नहीं।

समाधान :- वह छूट जाता है।

मुमुक्षु :- लेकिन पर्याय में जो राग उत्पन्न होता है और एक समय की पर्याय में एकत्वपना, वह जाननेसे कैसे टले?

समाधान :- पर्याय में जो रागादि होते हैं वह समझे कि ये मेरा स्वभाव नहीं है। यह तो पुरुषार्थ की मन्दतासे (होते हैं), कर्म का निमित्त है, यह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। शुद्ध स्वभाव को पहचाने, तत्त्व का मूल स्वरूप पहचाने। उसके मूल तत्त्व का स्वरूप क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय को पहचाने लेकिन ये तो विभाव पर्याय (है)। इस तत्त्व का मूल स्वरूप क्या है? तत्त्व के मूल को पहचाने तो वह राग-द्वेष की एकत्वबुद्धि टूट जाती है कि यह मेरा मूल स्वभाव नहीं है। यह स्वभाव तो आकुलता और दुःखरूप है, यह स्वभाव मेरा नहीं है। जो अपना स्वभाव हो वह स्वयं को ही आकुलता और दुःखरूप हो, ऐसा मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसा विचार करे तो छूट जाता है। मूल तत्त्व को पहचाने तो वह भी छूट जाता है।

मुमुक्षु :- अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में मूल स्वभाव को पहचाने-ध्रुव स्वभाव को, तो पर्याय की एकता भी छूट जाये।

समाधान :- पर्याय की एकता छूट जाती है, एकत्वबुद्धि टूट जाती है। फिर पुरुषार्थ की मन्दतासे बाकी रहे वह अलग बात है। बाकी उसे टूट जाती है कि यह मेरा स्वभाव नहीं है।

✼

( पृष्ठ संख्या १५ से आगे..)

होना कठिन है।

आरंभ परिग्रहमें वृत्तिको मंद करना और सत्शास्त्रके परिचयमें रुचि करना प्रथम तो कठिन पड़ता है, क्योंकि जीवका अनादि प्रकृतिभाव उससे भिन्न है, तो भी जिसने वैसा करनेका निश्चय कर लिया है वह वैसा कर सका है; इसलिये विशेष उत्साह रखकर वह प्रवृत्ति कर्तव्य है।

सब मुमुक्षुओंको इस बातका निश्चय और नित्य नियम करना योग्य है, प्रमाद और अनियमितता दूर करना योग्य है।

✼


## आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जून-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंकको समर्पणराशि स्व. छोटालाल छगनलाल देसाई एवं स्व. ललिताबहिन छोटालाल देसाईके स्मरणार्थ हस्ते कीर्तिभाई देसाई, अमरिका की ओर से ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है। अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

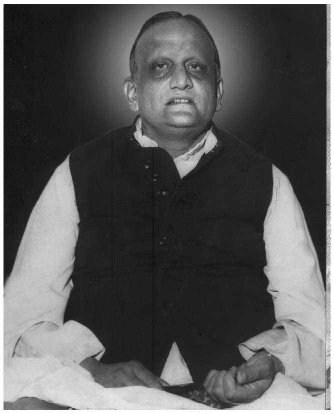

**'सम्यक्ज्ञानकी प्रवृत्ति' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में से चयन किये गये वचनामृत**

'मैं' अडिग हूँ, किसीसे डिगनेवाला नहीं हूँ - ऐसा निश्चय होनेपर, निर्णय का फल आनंद आना चाहिए; तब ही निर्णय सच्चा है। (३५)

✻

(असाता के उदय में) सम्यग्दृष्टि को दुःख का वेदन होता है; लेकिन अपने स्वभाव की अधिकता के वेदन में उस वेदन की गौणता हो जाती है। ज्ञान में, शांति के वेदन के साथ-साथ दुःख का वेदन आता है; परंतु वह वेदन मुख्य नहीं होता। ज्ञानी को अपने स्वभाव की ही अधिकता रहती है, अपने स्वभाव की अधिकता कभी नहीं छूटती। (५५)

✻

जब दृष्टि अपने स्वभाव में प्रसर जाती है, तब पाँचों समवाय अपने ज्ञान में ज्ञेय हो जाते हैं। (५६)

✻

शुद्ध जीवास्तिकाय की दृष्टि बिना, शास्त्र में जो कथन आते हैं उनकी कितनी हद तक मर्यादा है? - वह समझ में नहीं आती। और दृष्टि होनेपर ज्ञान में सहज ही सब बातें समझमें आ आती हैं। (१६६)

✻

अपन तो अपने ही सुख-धाम में बैठे रहें, जमे रहें...बस! - यही एक बात क़ायम रख करके, दूसरी-दूसरी सभी बातों को खतिया लो। (१८८)

✻

दृष्टि खुले बिना शास्त्र का अर्थ भी यथार्थरूप से खतिया नहीं सकते। खतियाने में इधर की (-आत्मा की) मुख्यता कभी गौण नहीं होनी चाहिए; इधर की मुख्यता क़ायम रखकर ही सब कथन खतिया ने चाहिए। (१९३)

✻

परिणाम का कार्य परिणाम करेगा, तुम उसकी दरकार छोड़ो; तुम तो अपने नित्यघर में ही बैठे रहो। अपने घर में (द्रव्यस्वभाव में) बैठे, तो सब सहज ही सहज है। परिणाम का चश्मा (पर्याय में 'मैं-पना') लगाया हुआ हो तो (स्वयं) परिणामरूप ही भासता है, अपरिणामी नहीं भासता। (१९८)

✻

'मैं निष्क्रिय हूँ' - यह चश्मा तो सदा ही लगाए रखना चाहिए। दूसरा चश्मा लगाते समय भी, यह चश्मा तो लगाए ही रखना चाहिए; इसके बिना तो कुछ भी दिखलाई नहीं देगा। (यहाँ चश्मा शब्द का वाच्य 'दृष्टिकोण' है।) (२०५)

# कृपालुदेव के प्रति अपने सर्व परिणामों की पूरी किताब खुली करके करीब हररोज़ पत्र लिखते हुए सरलतामूर्ति श्री सोभागभाई

पत्रांक-७

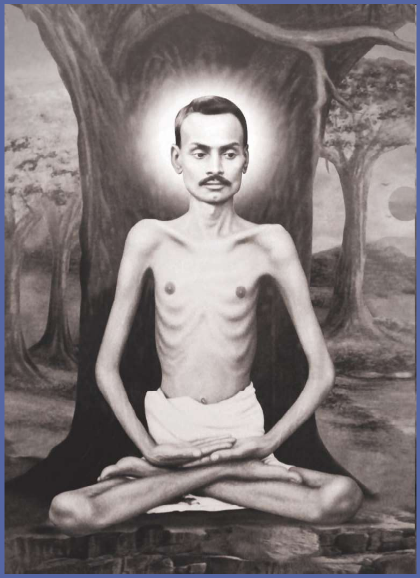

सं १९४९, दूसरा अषाढ़ सुदि १२, मंगलवार

प्रेम पूज्य तरणतारण बोधस्वरुप परमात्मा देव साहेबजी श्री राज्यचंद्रभाई की चिरंजीवी बहुत हो।

श्री मोरबी से लिखितन आज्ञांकित सेवक सोभागका चरण प्रति वंदन स्वीकार किजियेगा। आपका कृपापत्र इन दिनों काफ़ी दिन से प्राप्त नहीं हुआ इसलिये मन व्याकुल रहा करता है। अत: दया करके कृपा करके पत्र लिखियेगा और जिन प्रश्नों के उत्तर की वांच्छा की है उसका समाधान भी लिखियेगा।

कभी-कभी बात पूछने की इच्छा तो होती है किन्तु आपकी ओर  से उत्तर नहीं मिलता है और तो और कोई प्रश्न उठता नहीं है और उठता है तो उसका समाधान आपकी ओर से मिलता नहीं है। कबीरजी ने लिखा है कि 'जो खीले को पकड़ के रहेता है उसका कोई बाल भी बांका नहीं हो सकता'-तो मेरा भी ऐसा ही है। यह तो जीव को आनंद आये इसलिए कभी-कभी (प्रश्न) स्मरण आने पर लिखता हूँ। सो तो सिर्फ जानकारी हेतु, इसके अलावा विशेष कोई प्रयोजन नहीं। जानना था सो तो जान लिया। अब कुछ जानना बाकी (नहीं रहा)। या समझो आप जैसे सामर्थवान को साक्षात् जान लिया है तो अब दूसरी कोई परवा है नहीं। जैसे गोपियों ने ओधवजी को कह दिया था कि, आपके ज्ञानमें हम न तो कुछ समझते हैं और नाहि हमें आपके ज्ञानकी कोई आवश्यकता भी है। अब आपकी जैसी ईच्छा हो वैसा कीजिए। चाहे तो समागम में रखिये चाहे तो दूर रखिये परन्तु हमें तो रात-दिन आप की ही भजना रहनेवाली है। अत: कृपा करके मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। इसमें आपका तो कोई नुकसान है नहीं, विशेष क्या लिखूँ? मेरी तरफ से चि. मनसुख का केशवलाल को यथातथ्य कहियेगा। चि. मणीलाल सायला से कल आया है। इन दिनों करीब २०० मण(२० किलो=१ मण) रूई की खरीद की है। इसका वजन करने के लिये सायला से बुलाया था सो आया है।

लि. सोभाग

*REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026*
*RENEWED UPTO : 31/12/2026*
*R.N.I. NO. : 70640/97*
*Published : 10th of Every month at BHAV.*
*Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS*
*Total Page : 20*

# 'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

## श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
### भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3750**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
**Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir**
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001